INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

भारत में सामाजिक और आर्थिक अधिकारों का संरक्षण

[1]सुशील चंद्रा द्विवेदी [2]डॉ. गजेंद्र साहू
[1]शोधार्थी, [2]पर्यवेक्षक
[1–2]विभाग: इतिहास, भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ

सार:
भारत में मानवाधिकार कानूनों का विकास एक जटिल प्रक्रिया रही है, जो देश के ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों से प्रभावित है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान में मानवाधिकारों को एक मजबूत कानूनी ढांचे के रूप में स्थापित किया गया, जिसमें नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की गई। हालांकि, जातिवाद, लैंगिक हिंसा और धार्मिक असहिष्णुता जैसी समस्याएं आज भी मानवाधिकारों के प्रवर्तन में बाधाएं उत्पन्न करती हैं। इस अध्ययन में भारत में मानवाधिकार कानूनों के विकास, चुनौतियों और इसके संस्थागत संरचनाओं, जैसे राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी), के योगदान पर चर्चा की गई है। इसके अलावा, शिक्षा का अधिकार अधिनियम और इसके कार्यान्वयन में आ रही चुनौतियों का भी विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द:
भारत, मानवाधिकार, संविधान, शिक्षा का अधिकार, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, न्यायिक सक्रियता, सामाजिक असमानता, आरटीई अधिनियम, श्रमिक अधिकार, भेदभाव, लैंगिक हिंसा।

समकालीन भारत में मानवाधिकारों का अवलोकन

समकालीन भारत में मानवाधिकार देश के ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास से निर्मित एक जटिल परिदृश्य को दर्शाते हैं। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद से, भारत ने मानवाधिकारों को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण प्रगति की है, हालांकि इसे लगातार चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। भारत में मानवाधिकारों का मूलभूत सिद्धांत इसके संविधान में निहित है, जो नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए एक मजबूत ढांचा प्रदान करता है। हालांकि, सामाजिक ऊंच–नीच, व्यापक गरीबी और असमानताओं के कारण ये अधिकार हमेशा पूरी तरह से साकार नहीं हो पाते हैं। जाति आधारित भेदभाव, लैंगिक हिंसा और धार्मिक असहिष्णुता जैसे मुद्दे समानता और न्याय के मार्ग में महत्वपूर्ण बाधाएं बने हुए हैं। फिर भी, इन चुनौतियों के बावजूद, भारत ने कई क्षेत्रों में प्रगति की है। उदाहरण के लिए, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण जैसी सकारात्मक कार्रवाई नीतियों की शुरुआत का उद्देश्य हाशिए पर पड़े समुदायों का उत्थान करना और ऐतिहासिक अन्याय को दूर करना है। भारत ने महिलाओं, बच्चों, अल्पसंख्यकों और विकलांगों के अधिकारों की रक्षा के लिए कई कानून भी बनाए हैं, जैसे घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम और शिक्षा का अधिकार अधिनियम। हाल के वर्षों में, भोजन के अधिकार और काम के अधिकार सहित आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के महत्व को तेजी से मान्यता मिली है, और सरकार राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एनआरईजीए) जैसी पहलों के माध्यम से गरीबी को दूर करने के प्रयास कर रही है।

हालांकि, इन अधिकारों का प्रवर्तन असंगत बना हुआ है, और भेदभाव, भ्रष्टाचार और अपर्याप्त कार्यान्वयन जैसी व्यवस्थागत समस्याएं सभी के लिए न्याय प्राप्त करने के प्रयासों को लगातार बाधित कर रही हैं। वैश्विक मानवाधिकार चर्चा में भारत की भूमिका प्रभावशाली रही है, क्योंकि देश मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (यूएचडीआर) और नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय संधि (आईसीसीपीआर) जैसी

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

कई अंतरराष्ट्रीय संधियों और सम्मेलनों का हस्ताक्षरकर्ता है। फिर भी, घरेलू चुनौतियां बनी हुई हैं, विशेष रूप से कश्मीर जैसे संघर्ष क्षेत्रों में मानवाधिकारों की रक्षा, धार्मिक अल्पसंख्यकों के अधिकारों और शरणार्थियों एवं प्रवासियों के साथ व्यवहार के संबंध में। इसलिए, मानवाधिकारों के प्रति राज्य की प्रतिबद्धता एक सतत प्रक्रिया है, जिसके लिए निरंतर सुधार और सरकार एवं नागरिक समाज दोनों की सक्रिय भागीदारी की आवश्यकता है।[1]

भारत में मानवाधिकार कानून का विकास

भारत में मानवाधिकार कानून का विकास देश के औपनिवेशिक अतीत, स्वतंत्रता संग्राम और एक संप्रभु गणराज्य के रूप में उसके बाद के सफर से गहराई से जुड़ा हुआ है। औपनिवेशिक काल में, अंग्रेजों द्वारा लागू किया गया कानूनी ढांचा काफी हद तक दमनकारी और शोषणकारी था, जिसमें स्वदेशी आबादी के अधिकारों की रक्षा का कोई ध्यान नहीं रखा गया था। हालांकि, महात्मा गांधी जैसे नेताओं के नेतृत्व में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन न्याय, समानता और मानवीय गरिमा के मूल सिद्धांतों पर आधारित था। गांधीजी के अहिंसा और सत्य के दर्शन ने मानव जीवन के आंतरिक मूल्य और सामाजिक एवं राजनीतिक समानता की आवश्यकता पर बल दिया। इस दृष्टिकोण ने भारत के स्वतंत्रतोत्तर मानवाधिकार ढांचे की नींव रखी। 1950 में भारतीय संविधान के मसौदा तैयार होने के साथ ही, देश ने औपचारिक रूप से मानवाधिकारों की रक्षा को अपनाया और उन्हें अपनी कानूनी व्यवस्था का आधार बनाया। संविधान ने सभी नागरिकों के लिए मौलिक अधिकारों को सुनिश्चित किया, जिनका उद्देश्य कानून के समक्ष समानता, बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार जैसी स्वतंत्रताओं की गारंटी देना था। इन प्रावधानों का उद्देश्य व्यक्तियों को भेदभाव और मनमानी सरकारी कार्रवाई से बचाना था। समय के साथ, भारत में मानवाधिकार कानून समाज की बदलती जरूरतों को पूरा करने के लिए विकसित हुआ है, जो देश की बढ़ती विविधता और इसके सामाजिक–आर्थिक परिदृश्य की जटिलताओं को दर्शाता है।

1970 और 1980 के दशकों में, भारतीय न्यायपालिका ने मानवाधिकार संरक्षण के दायरे को बढ़ाने में अधिक सक्रिय भूमिका निभाना शुरू किया और संवैधानिक प्रावधानों की इस तरह व्याख्या की जिससे वंचित समूहों को भी अधिकार प्राप्त हो सकें। उदाहरण के लिए, मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) का ऐतिहासिक मामला, जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के दायरे को बढ़ाकर उसमें गरिमापूर्ण जीवन जीने के अधिकार को भी शामिल करने में सहायक रहा। 1980 और 1990 के दशकों में न्यायिक सक्रियता के कारण स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार, भोजन का अधिकार और शिक्षा का अधिकार जैसे नए अधिकारों का सृजन हुआ। 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी) की स्थापना मानवाधिकार संरक्षण को संस्थागत रूप देने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। मानवाधिकार उल्लंघनों की जांच और सुधारात्मक उपायों की सिफारिश करने में एनएचआरसी की भूमिका दुर्व्यवहारों को दूर करने में महत्वपूर्ण रही है, हालांकि राज्य के सहयोग पर इसकी निर्भरता और प्रवर्तन शक्ति की कमी के कारण इसकी प्रभावशीलता सीमित रही है। भारत में मानवाधिकार कानून का विकास वैश्विक मानवाधिकार ढांचे में देश के बढ़ते एकीकरण के साथ–साथ हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र में भारत की भागीदारी और अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों का पालन करने से घरेलू नीतियों को आकार देने में मदद मिली है, लेकिन भारत की अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं और मानवाधिकार संरक्षण की जमीनी हकीकत के बीच अभी भी अंतर बना हुआ है। 21वीं सदी में कई नई चुनौतियां सामने आई हैं, जिनमें डिजिटल युग में निजता, सोशल मीडिया पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और शरणार्थियों एवं

[1] घटक, एस., और उदोगु, ई.आई. (2012). समकालीन भारत में अल्पसंख्यकों के मानवाधिकार मुद्दे: एक संक्षिप्त विश्लेषण। जर्नल ऑफ थर्ड वर्ल्ड स्टडीज, 29(1), 203–230

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

प्रवासियों के साथ व्यवहार से संबंधित मुद्दे शामिल हैं, जो समकालीन चिंताओं के अनुरूप मानवाधिकार कानून के निरंतर अनुकूलन की आवश्यकता को उजागर करते हैं।

मानवाधिकार संस्थान और उनकी भूमिका

इस अध्ययन का दायरा और संरचना भारत में मानवाधिकार कानून का व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए तैयार की गई है, जिसकी शुरुआत इसके ऐतिहासिक विकास के अन्वेषण से होती है और समकालीन चुनौतियों के विश्लेषण की ओर बढ़ती है। अध्ययन को कई खंडों में विभाजित किया गया है, जिनमें से प्रत्येक भारतीय संदर्भ में मानवाधिकार कानून के विभिन्न पहलुओं को संबोधित करता है। पहला खंड भारत में मानवाधिकारों को आधार प्रदान करने वाले संवैधानिक ढांचे का गहन विश्लेषण करता है, जिसमें नागरिकों को प्रदत्त मौलिक अधिकारों पर विशेष ध्यान दिया गया है। यह इस बात का विश्लेषण करता है कि भारतीय न्यायपालिका द्वारा इन अधिकारों की व्याख्या कैसे की गई है और न्यायिक सक्रियता ने इन अधिकारों के दायरे को विस्तारित करने में किस प्रकार महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह खंड इन अधिकारों के प्रभावी प्रवर्तन को सुनिश्चित करने में निहित सीमाओं और चुनौतियों का भी विश्लेषण करता है, विशेष रूप से व्यवस्थागत असमानताओं और सामाजिक अन्याय के संदर्भ में। दूसरा खंड भारत में प्रमुख मानवाधिकार संस्थानों की भूमिका पर केंद्रित है, जिसमें राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी) पर विशेष बल दिया गया है। एनएचआरसी के जनादेश, शक्तियों और चुनौतियों के साथ–साथ भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण में इसके योगदान का भी विश्लेषण किया गया है।[2]

इस खंड में मानवाधिकारों से संबंधित अन्य महत्वपूर्ण तंत्रों, जैसे कि राज्य स्तरीय मानवाधिकार आयोगों और नागरिक समाज संगठनों का भी विश्लेषण किया गया है, जो मानवाधिकार उल्लंघनों के लिए राज्य को जवाबदेह ठहराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। तीसरा खंड समकालीन भारत में मानवाधिकारों से जुड़ी मौजूदा चुनौतियों, विशेष रूप से महिलाओं, दलितों, स्वदेशी समूहों और धार्मिक अल्पसंख्यकों जैसे हाशिए पर पड़े समुदायों के संदर्भ में, पर प्रकाश डालता है। इसमें जाति आधारित भेदभाव, सांप्रदायिक हिंसा और श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा जैसे मुद्दों को भी शामिल किया गया है। इसके अतिरिक्त, यह खंड मानवाधिकारों और आर्थिक विकास के अंतर्संबंधों की पड़ताल करता है, जिसमें औद्योगीकरण, शहरीकरण और वैश्वीकरण के कमजोर आबादी पर पड़ने वाले प्रभावों पर विचार किया गया है। अंतिम खंड भविष्य की ओर देखता है, जिसमें उभरते मानवाधिकार मुद्दों, जैसे कि डिजिटल युग में निजता के अधिकार, मानवाधिकारों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव और वैश्विक मानवाधिकार क्षेत्र में भारत की बदलती भूमिका पर विचार किया गया है। यह इस बात का विश्लेषण करता है कि भारत का घरेलू मानवाधिकार ढांचा इन नई चुनौतियों के अनुकूल कैसे ढल रहा है और सुरक्षा में मौजूद कमियों को दूर करने के लिए सुधारों की क्या संभावनाएं हैं। इस संरचना के माध्यम से, यह अध्ययन भारत में मानवाधिकार परिदृश्य का एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जिसमें इसके विकास, वर्तमान चुनौतियों और भविष्य की संभावनाओं का विश्लेषण किया गया है।[3]

सामाजिक और आर्थिक अधिकार

सामाजिक और आर्थिक अधिकार मानवाधिकार कानून के महत्वपूर्ण घटक हैं जिनका उद्देश्य एक ऐसे समतावादी समाज को सुनिश्चित करना है जहां व्यक्तियों को शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, आवास और रोजगार जैसी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं तक पहुंच प्राप्त हो। भारत के संदर्भ में, ये अधिकार संविधान में निहित हैं

[2] एंटोन, डी.के., और शेल्टन, डी.एल. (2011). पर्यावरण संरक्षण और मानवाधिकार। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

[3] कुमारस्वामी, आर. (2014). अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकारों के लिए समकालीन चुनौतियाँ। रूटलेज हैंडबुक ऑफ इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स लॉ (पृष्ठ 127–139) में। रूटलेज।

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

और समय के साथ विकसित हुए हैं, विशेष रूप से हाशिए पर पड़े समूहों के अधिकारों पर ध्यान केंद्रित करते हुए। इनमें से, शिक्षा का अधिकार (आरटीई) एक मौलिक अधिकार के रूप में प्रमुखता से सामने आता है, जो यह मानता है कि शिक्षा तक पहुंच व्यक्तिगत सशक्तिकरण और सामाजिक प्रगति की कुंजी है। सरकार ने सभी बच्चों के लिए शिक्षा सुलभ बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं, विशेष रूप से तीव्र सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों के मद्देनजर। हालांकि, इन अधिकारों के कार्यान्वयन और विस्तार में चुनौतियां अभी भी बनी हुई हैं।

शिक्षा का अधिकार

शिक्षा का अधिकार (आरटीई) भारत के मानवाधिकार ढांचे का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो प्रत्येक बच्चे को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अवसर प्रदान करने की राष्ट्र की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। गरीबी से उबरने और सामाजिक एवं आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में शिक्षा के महत्व को समझते हुए, भारत सरकार ने 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शिक्षा के अधिकार को अपनी नीतिगत कार्यसूची के प्रमुख उद्देश्यों में से एक के रूप में प्राथमिकता दी है। वर्ष 2002 में भारतीय संविधान के 86वें संशोधन ने अनुच्छेद 21–ए के तहत शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया, जिसे बाद में 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम द्वारा और मजबूत किया गया। आरटीई अधिनियम का उद्देश्य शिक्षा को सार्वभौमिक रूप से सुलभ, निःशुल्क और बच्चों के लिए अनिवार्य बनाकर शिक्षा के अंतर को कम करना है, जिसमें विशेष रूप से हाशिए पर स्थित और वंचित समूहों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। यह अधिनियम सुनिश्चित करता है कि सभी बच्चों को, उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति, जाति या धर्म की परवाह किए बिना, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अधिकार है। इसमें कुछ दिशा–निर्देश निर्धारित किए गए हैं, जैसे कि बच्चे के घर से एक निश्चित दूरी के भीतर स्कूलों की स्थापना, योग्य शिक्षकों की भर्ती, पर्याप्त बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराना और स्कूलों में बाल श्रम का उन्मूलन।

अपने महत्वाकांक्षी लक्ष्यों के बावजूद, आरटीई अधिनियम शिक्षा के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण रहा है और इसके परिणामस्वरूप अधिक स्कूलों का निर्माण और शिक्षकों की भर्ती हुई है। इसने स्कूली नामांकन दर बढ़ाने में, विशेष रूप से ग्रामीण और आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारों के बच्चों के लिए, और प्राथमिक स्तर पर बच्चों के स्कूल में बने रहने की दर में सुधार लाने में अहम भूमिका निभाई है। साक्षरता को बढ़ावा देने और उन बच्चों को समान शैक्षिक अवसर प्रदान करने के मामले में इस कानून का प्रभाव दूरगामी रहा है जो अन्यथा औपचारिक शिक्षा प्रणाली से वंचित रह जाते।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई)

वर्ष 2009 में पारित शिक्षा का अधिकार अधिनियम एक ऐतिहासिक कानून है जो 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए शिक्षा सुनिश्चित करने की राज्य की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। यह कानून इस विश्वास पर आधारित है कि प्रत्येक बच्चे को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अधिकार है जो उनके बौद्धिक, शारीरिक और भावनात्मक विकास को बढ़ावा दे और उन्हें समाज में भागीदारी के लिए तैयार करे। अधिनियम के अनुसार सभी निजी स्कूलों को आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत सीटें आरक्षित करनी होंगी और सार्वजनिक एवं निजी दोनों स्कूलों को कुछ शैक्षिक मानकों को बनाए रखने के लिए जवाबदेह ठहराया गया है। इनमें छात्र–शिक्षक अनुपात, बुनियादी ढांचा और शिक्षण सामग्री की उपलब्धता से संबंधित दिशानिर्देश शामिल हैं। आरटीई अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों में से एक प्राथमिक स्कूलों में प्रवेश के लिए स्क्रीनिंग प्रक्रियाओं पर रोक लगाना है, जो यह सुनिश्चित करता है कि प्रवेश के समय उनकी पृष्ठभूमि या शैक्षणिक प्रदर्शन की परवाह किए बिना सभी बच्चों को शिक्षा तक समान पहुंच प्राप्त हो।

इस अधिनियम में शिक्षकों की योग्यता के लिए स्पष्ट मानक भी निर्धारित किए गए हैं, जिससे यह सुनिश्चित

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

होता है कि शिक्षकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण और संसाधन उपलब्ध हों। आठवीं कक्षा तक बिना किसी दंड के पढ़ाई जारी रखने की नीति से भी स्कूल छोड़ने की दर कम हुई है, जिससे बच्चे असफलता या कलंक के डर के बिना अपनी शिक्षा जारी रख सकते हैं। आरटीई अधिनियम का यह घटक एक समावेशी और सहायक शिक्षण वातावरण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बनाया गया है, जहां विभिन्न सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि के बच्चों को बिना किसी भेदभाव के स्कूल में बने रहने और अपनी शिक्षा जारी रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

इसके अलावा, आरटीई अधिनियम बच्चों के अनुकूल शिक्षण वातावरण की आवश्यकता पर बल देता है और विद्यालयों में विद्यार्थियों की शारीरिक सुरक्षा की वकालत करता है। यह विद्यालयों में सुरक्षित पेयजल, स्वच्छ शौचालय और खेल के मैदान जैसी बुनियादी सुविधाओं के प्रावधान पर जोर देता है। इस समग्र दृष्टिकोण का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि विद्यालय केवल अकादमिक शिक्षा के स्थान न हों, बल्कि ऐसे स्थान भी हों जो बच्चों के समग्र कल्याण को बढ़ावा दें और एक अधिक पोषणकारी और समावेशी शिक्षा प्रणाली को विकसित करें।

हालांकि, आरटीई अधिनियम ने शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित करने में सफलता तो हासिल की है, लेकिन इसके कार्यान्वयन में कई बाधाएं आई हैं। कानूनी ढांचे और जमीनी हकीकत के बीच एक बड़ा अंतर है, जो अधिनियम की प्रभावशीलता को प्रभावित करता है।

शिक्षा के अधिकार को लागू करने में चुनौतियाँ

शिक्षा का अधिकार अधिनियम के महत्वाकांक्षी लक्ष्यों के बावजूद, इसे लागू करना एक बड़ी चुनौती साबित हुआ है। आरटीई अधिनियम के वादों को पूरी तरह साकार करने में कई कारक बाधा डालते हैं। इनमें से एक सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा देश के कई हिस्सों, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त बुनियादी ढांचे की कमी है। यद्यपि सरकार ने स्कूलों के निर्माण में पर्याप्त निवेश किया है, फिर भी कई स्कूलों में स्वच्छ पेयजल, कार्यशील शौचालय और पर्याप्त कक्षा स्थान जैसी बुनियादी सुविधाओं का अभाव है। ये कमियां एक ऐसा वातावरण बनाती हैं जो प्रभावी शिक्षा के लिए अनुकूल नहीं है, विशेष रूप से दूरस्थ और पिछड़े क्षेत्रों में।[4]

बुनियादी ढांचे की समस्याओं के अलावा, योग्य शिक्षकों की भी कमी है। शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षकों की योग्यता और कौशल पर बहुत हद तक निर्भर करती है, और देश के कई हिस्सों में प्रशिक्षित शिक्षकों की भारी कमी है। आरटीई अधिनियम के अनुसार सभी शिक्षकों के पास विशिष्ट योग्यताएं होनी चाहिए, लेकिन शिक्षकों की भर्ती और उन्हें बनाए रखना, विशेष रूप से ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में, लगातार एक समस्या बनी हुई है। कम वेतन, खराब कार्य परिस्थितियां और अपर्याप्त व्यावसायिक विकास के अवसर अक्सर प्रतिभाशाली व्यक्तियों को शिक्षण पेशे में आने या बने रहने से हतोत्साहित करते हैं।

एक और बड़ी चुनौती निजी स्कूलों में वंचित बच्चों के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण के कार्यान्वयन का विरोध है। हालांकि अधिनियम के अनुसार निजी स्कूलों को अपनी एक चौथाई सीटें आर्थिक रूप से कमजोर पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए आरक्षित करनी होंगी, लेकिन कई निजी संस्थान इस प्रावधान का पालन करने में आनाकानी कर रहे हैं। इन बच्चों के साथ भेदभाव और उचित सहायता की कमी की खबरें आई हैं, जिससे शैक्षिक असमानताएं और बढ़ रही हैं। इसके अलावा, कुछ स्कूलों, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में, ने या तो अधिक शुल्क लेकर या गरीब पृष्ठभूमि के बच्चों के प्रवेश में अप्रत्यक्ष बाधाएं पैदा करके इस आवश्यकता को दरकिनार करने के तरीके खोज लिए हैं।

[4] कुमार, सी.आर. (2011). भारत में भ्रष्टाचार और मानवाधिकारः पारदर्शिता और सुशासन पर तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

प्रभावी कार्यान्वयन में एक और बाधा आरटीई अधिनियम के प्रावधानों के बारे में जन जागरूकता की कमी है। भारत के कई हिस्सों में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, माता–पिता अक्सर अपने बच्चों के शिक्षा के अधिकार से अनभिज्ञ होते हैं, और इस मुद्दे पर जागरूकता अभियान का स्तर भी कम है। जागरूकता की इस कमी के कारण कई बार बच्चे स्कूल से वंचित रह जाते हैं, या तो इसलिए कि उनके परिवार संबंधित खर्चों को वहन नहीं कर सकते या इसलिए कि वे नामांकन प्रक्रियाओं से अनभिज्ञ होते हैं। इसके अलावा, पारंपरिक शिक्षण विधियों से अधिक बाल–केंद्रित, समावेशी शिक्षा की ओर संक्रमण के लिए एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक बदलाव की आवश्यकता है, जिसे साकार होने में समय लगता है।[5]

इसके अलावा, शिक्षा प्रणाली से जुड़ी कई चुनौतियाँ भी हैं, जैसे कि कक्षाओं में अत्यधिक भीड़, पुराने शिक्षण तरीके और आलोचनात्मक सोच कौशल विकसित करने पर ध्यान न देना। कई स्कूल अभी भी रटने पर आधारित शिक्षा पर निर्भर हैं और बच्चों के सर्वांगीण विकास पर सीमित जोर दिया जाता है, जो आरटीई अधिनियम का एक प्रमुख लक्ष्य है। विवादित रही 'नो डिटेंशन' नीति ने शिक्षा की गुणवत्ता को लेकर चिंताएँ पैदा कर दी हैं। आलोचकों का तर्क है कि यह नीति बच्चों को आवश्यक पाठ्यक्रम को पूरी तरह से समझे बिना ही कक्षाएँ उत्तीर्ण करने की अनुमति देती है, जिससे उनके दीर्घकालिक शैक्षिक परिणामों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम भारत में सभी बच्चों के लिए शिक्षा तक पहुंच सुनिश्चित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, लेकिन इसके कार्यान्वयन में कई चुनौतियां हैं जिनका समाधान आवश्यक है। इन बाधाओं को दूर करने के लिए स्थानीय, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर समन्वित प्रयासों के साथ–साथ नागरिक समाज की सक्रिय भागीदारी और शिक्षा को एक मौलिक मानवाधिकार के रूप में महत्व देने की दिशा में व्यापक सांस्कृतिक बदलाव की आवश्यकता है। सरकार को बुनियादी ढांचे, शिक्षक प्रशिक्षण और जागरूकता अभियानों में निवेश करना चाहिए, साथ ही यह सुनिश्चित करना चाहिए कि निजी संस्थान अधिनियम के प्रावधानों का पालन करें। केवल निरंतर प्रयासों से ही भारत में सभी बच्चों के लिए सार्वभौमिक, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का सपना पूरी तरह साकार हो सकता है।

निष्कर्ष:

भारत में मानवाधिकार कानूनों का विकास एक लगातार विकसित हो रही प्रक्रिया है, जो देश के समग्र विकास और सामाजिक न्याय की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। हालांकि, कई आंतरिक चुनौतियाँ और व्यवस्थित असमानताएं इन अधिकारों के पूर्ण कार्यान्वयन में बाधाएं उत्पन्न करती हैं, फिर भी भारतीय संविधान और न्यायपालिका ने इन अधिकारों की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विशेष रूप से, शिक्षा का अधिकार अधिनियम ने समावेशी शिक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति की है, लेकिन इसके कार्यान्वयन में बुनियादी ढांचे की कमी, योग्य शिक्षकों की कमी और जागरूकता की कमी जैसी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। इसके समाधान के लिए सरकारी प्रयासों के साथ नागरिक समाज की सक्रिय भागीदारी और समाज में सांस्कृतिक बदलाव की आवश्यकता है। केवल संयुक्त प्रयासों से ही हम भारत में सार्वभौमिक और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित कर सकते हैं और मानवाधिकारों की रक्षा में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

संदर्भ

- फिट्जपैट्रिक, जे.एम. (2018). संकट में मानवाधिकारः आपातकाल की स्थिति के दौरान अधिकारों की रक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली। यूनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिलवेनिया प्रेस।

[5] दास, जे.के. (2022). मानवाधिकार कानून और व्यवहार. पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड

- क्रिडल, ई.जे., और फॉक्स–डिसेंट, ई. (2012). मानवाधिकार, आपात स्थिति और कानून का शासन। मानवाधिकार त्रैमासिक, 34(1), 39–87
- अलीविजैटोस, एन., बिलकोवा, वी., कैमरून, आई., कास्क, ओ., और तुओरी, के. (2020). आपातकाल की स्थिति में लोकतंत्र, मानवाधिकार और कानून के शासन का सम्मान – चिंतन। यूरोप परिषद, कोविड–19 स्वास्थ्य संकट के ढांचे में लोकतंत्र, कानून के शासन और मानवाधिकारों का सम्मान – सदस्य राज्यों के लिए एक टूलकिट, स्ट्रासबर्ग, 2–6।
- बाइंडर, सी., सेर्ना, सी.एम., सिस्मास, आई., पीटरसन, एन., सोम्मारियो, ई., और काडेलबैक, एस. (2025)। आपातकाल के समय में मानवाधिकारः आपातकाल के समय के संबंध में राज्य अभ्यास का आकलन। ओस्लो लॉ रिव्यू, 12(1), 1–37।
- रेनॉल्ड्स, जे. (2010). उपनिवेशवाद की लंबी छायाः अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून में आपातकाल के सिद्धांत की उत्पत्ति। तुलनात्मक अनुसंधान कानून और राजनीतिक अर्थव्यवस्था, 6(5)
- हैफनर–बर्टन, ई.एम., हेल्फर, एल.आर., और फारिस, सी.जे. (2011)। आपातकाल और पलायनः मानवाधिकार संधियों से विचलन की व्याख्या। अंतर्राष्ट्रीय संगठन, 65(4), 673–707।
- फोर्नारोली, जी., और रेटिग, सी. (2023). आपातकाल के तहत मानवाधिकार। सामाजिक सिद्धांत और अभ्यास, 49(3), 437–462
- क्लैम्बर्ग, एम. (2021). अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून और आपातकाल की स्थिति। युद्ध में मानवाधिकार (पृष्ठ 1–59)। सिंगापुरः स्प्रिंगर सिंगापुर।
- ग्रीन, ए. (2011). सामान्यता को आपातकाल से अलग करनाः मानवाधिकारों पर यूरोपीय सम्मेलन के अनुच्छेद 15 का न्यायशास्त्र। जर्मन विधि जर्नल, 12(10), 1764–1785.
- विरात्रमन, एचपी (2020)। क्या इंडोनेशियाई कोविड–19 आपातकालीन कानून कानून के शासन और मानवाधिकारों को सुरक्षित करता है? जेसेहर, 4, 306।